Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal) ISSN: 3048-5991
Journal home page: https://integralresearch.in/ Vol. 01, No. 05, July. 2024

महाकवि कालिदास का उपमा-वैशिष्ट्य

डॉ. बैकुण्ठ नाथ शुक्ल *
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
संस्कृत विभाग,
ने.मे.शि.ना.दास (पी.जी.) कॉलेज,
बदायूँ
DOI: https://doi.org/10.57067/ir.v1i5.347

सारांश

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के अनुपम कवि हैं, जिन्होंने उपमा अलंकार को केवल शब्द-सज्जा तक सीमित न रखकर काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उनकी उपमाएँ सादृश्यमूलक होने के साथ-साथ काव्यार्थ को गहन सौंदर्य और भावाभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। आचार्य उद्भट ने उनकी उपमा-शक्ति की प्रशंसा करते हुए कहा—"उपमा कालिदासस्य, भारवेरर्थगौरवम्। दण्डिनः पदलालित्यं, माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥" कालिदास की उपमाएँ साधारण धर्म (समान गुण) पर आधारित होते हुए भी उपमेय और उपमान के बीच एक अद्भुत सौंदर्यात्मक सामंजस्य स्थापित करती हैं। उन्होंने उपमा को रूपक, दृष्टान्त, अतिशयोक्ति जैसे अन्य अलंकारों से अलग एक विशिष्ट स्थान दिया। कालिदास की उपमाएँ केवल शब्दचित्र नहीं, बल्कि भावी घटनाओं का सूक्ष्म संकेत भी देती हैं। उनके काव्य में उपमा काव्यात्मा की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बन जाती है।

Keywords: *महाकवि कालिदास, उपमा-वैशिष्ट्य, वाल्मीकि, गुणलेश, शब्दचित्र।*

महाकवि कालिदास उपमा के सिद्ध कवि हैं। शेष कवियों की भाँति उन्होंने उपमा को केवल अलङ्कार मात्र न मानकर, उसे काव्यात्मा के शिखर पर पहुँचा दिया। उनकी दृष्टि में उपमा एक अलङ्कार की कोटि से ऊपर उठकर काव्य के प्राणतत्त्व के रूप में स्थापित है। उपमान की सार्थकता सिद्ध कर देने में समर्थ उपमेय ही उपमा को असाधारण बनाने में सक्षम हो सकता है। इसीलिए प्रसिद्ध अलङ्कारशास्त्री आचार्य उद्भट को विवश होकर यह कहना ही पड़ा कि-

> "उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थ-गौरवम्।
> दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥"
>
> (आचार्य उद्भट)

ऐसा नहीं है कि कालिदास केवल उपमा के प्रयोग में ही सिद्ध थे, वे एक सर्वश्रेष्ठ काव्य-सर्जक भी थे। कविता-कामिनी के प्रति उनकी परिकल्पना शक्ति अद्भुत रही है। इसीलिए उनकी काव्य-कला गुण, रीति, वक्रोक्ति, अलङ्कार, ध्वनि, रस और उपमा की दृष्टि से सर्वोत्तम रही है। प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि यदि वाल्मीकि और व्यास को छोड़कर देखा जाए तो, अन्य कोई भी रचनाकार कालिदास के समक्ष नहीं टिकता है।

* Corresponding Author: Dr. Baikunth Nath Shukla
E-mail: anubaikunth.7375@gmail.com
Received 10 June 2024; Accepted 21 July 2024. Available online: 30 July 2024.
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-NonCommercial 4.0 International License

Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal) ISSN: 3048-5991
Journal home page: https://integralresearch.in/ Vol. 01, No. 05, July. 2024

जब हम उपमा की बात करते हैं तो, प्रायः उपमा के विशेष लक्षण और परिधि तक ही सीमित रहकर अध्ययन करके शान्त हो जाते हैं। किन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए। हमें इस बात पर बल देकर विचार करने आवश्यकता है कि उपमा की उद्भावना का स्रोत सादृश्यमूलकता है। तो, इस विचार से सादृश्यपोषित जितने भी अलङ्कार हैं उन सभी का परिगणन उपमा के विचार-विमर्श का विषय होना चाहिए। सादृश्य उपमा का प्रयोजक है और उपमा सादृश्य का अभिव्यञ्जक संस्थान। सादृश्यमूलकता से पुष्ट अलङ्कारों में- रूपक, उपमा, निदर्शना, प्रतीप, सन्देह, भ्रान्तिमान्, तुल्योगिता, दृष्टान्त, अतिश्योक्ति, समासोक्ति, व्यतिरेक, दीपक का परिगणन किया गया है।

महाकवि कालिदास की उपमा का यह वैशिष्ट्य अकारण नहीं है। वह केवल औपम्य और सादृश्य के प्रयोज्य-प्रयोजक भाव पर ही निर्भर नहीं है। कालिदास ने उसे एक अलग ही स्थान दिया है। यदि हम सादृश्यमूलकता को ही उपमा का बीच मानेंगे तो, उपमा और अन्य उपमेतर अलङ्कारों में भेद-निर्णय का आधार क्या होगा? इन दोनों का अवच्छेदक धर्म क्या होगा? अलङ्कारशास्त्रियों में आचार्य दण्डी उपमा का लक्षण करते हुए लिखा है कि-"विद्यमान और अविद्यमान वस्तुओं में जिस किसी प्रकार से सादृश्यगत चमत्कार उद्धूत और अनुभूत हो,वही उपमा अलङ्कार है।" देखिए-

"यथाकथञ्चित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते।
उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोऽयं प्रदर्श्यते।।"

(काव्यादर्श 02/14)

रूपक और उपमा में मुख्य भेद यह है कि उपमा सादृश्यमूलक है और रूपक तादात्म्यमूलक। इसीलिए काव्यालंकारकार आचार्य भामह कहते हैं- "गुणों की समानता के आधार पर उपमान से उपमेय का तादात्म्य ही रूपक अलङ्कार है। यथा-

"उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्य रूप्यते।
गुणानां समतां दृष्ट्वा रूपकं नाम तद् विदुः।।"

(काव्यालंकार 02/21)

और पुनः आचार्य भामह रूपक के आधार पर ही उपमा को भी परिभाषित करने का सफल प्रयत्न करते हैं-

"विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः।
उपमेयस्य यत् साम्यं गुणलेशेन सोपमा।।"

(काव्यालङ्कार 02/30)

अर्थात् देश-काल-क्रियाजनित भेद वाले उपमान के साथ जो गुणलेश (अत्यल्प गुण) की समानता प्रदर्शित की जाती है, वही उपमा अलङ्कार है। उपमा के हेतुभूत सादृश्य के इस विस्तृत प्रपञ्च में परवर्ती काव्यशास्त्रियों का उपमा के विषय में मतैक्य होने पर भी उपमा के लक्षण के अतिव्याप्ति-निवारणार्थ उसे कुछ सीमित कर दिया गया। आचार्य विश्वनाथकृत उपमा-लक्षण इसका स्पष्ट दृष्टान्त है। उपमा के प्रसङ्ग में उसके चार अङ्गों- उपमेय, उपमान, साधारण धर्म और साधर्म्यवाचक 'इव' आदि शब्द का निरूपण किया गया है। प्रस्तुत विषय उपमेय है और अप्रस्तुत विषय उपमान है। प्रस्तुत विषय के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अप्रस्तुत विषय के सौन्दर्य के माध्यम से ही सम्पन्न हो पाती है। यही उसकी असाधारण एवं अलौकिक चमत्कृति है। इस चमत्कार की सीमा प्रस्तुत विषय में कहां तक होती है,इसका निर्धारण कठिन कार्य है। ध्यान देने की बात यह है कि बाद के काव्यशास्त्रियों ने साधारण धर्म की अपेक्षा

सादृश्यबोधक शब्द पर अधिक बल दिया है। परवर्ती आचार्यो ने उपमा को जिस भाव के साथ देखा, उससे उसकी मर्यादा और सामर्थ्य का ठीक-ठीक मूल्याङ्कन नहीं हो पाता है। उपमा प्रकृत सौन्दर्य का अनावरण है। और उपमा के इसी सामर्थ्य की ओर सङ्केत करते हुए आचार्य कुन्तक कहते हैं-

"विवक्षित – परिस्पन्द - मनोहारित्वसिद्धये।
वस्तुन केनचित् साम्यं तदुत्कर्षवतोपमा।।
तां साधारणधर्मोक्तौ वाक्यार्थे वा तदन्वयात्।
इवादिरपि विच्छित्त्या यत्र वक्ति क्रियापदम्।।"
(वक्रोक्तिजीवितम् 03/30-31)

स्पष्ट है कि वर्णनीय विषय के सौन्दर्य को विधिवत् उद्घाटित करने के लिए तथा उसके उत्कर्ष को ख्यापित करने के लिए उसकी समानता किसी अन्य अप्रस्तुत विषय से किया जाना ही उपमा अलङ्कार है। इव आदि शब्द काव्यार्थ में साधारणधर्म का अन्वय करके उपमा को उद्भावित करते हैं। आचार्य कुन्तक के उपमा-लक्षण से जो तथ्य प्रकाश में आते हैं, उनमें दो महत्वपूर्ण है।

(1) कवि अपने कविकर्म को चमत्कारयुक्त बनाने के लिए या वर्ण्य-विषय के मनोहारित्व को अभिव्यक्त करने के लिए उपमा का प्रयोग करता है।

(2) उपमा में सौन्दर्य की यह अनुभूति साधारणधर्म के कथन में होती है, फिर वह कथन जिस भी प्रकार से हो। और कदाचित् साधारणधर्म का कथन न किया गया हो, तो वाक्य के अर्थ में उसकी भावना करनी ही होगी। स्पष्ट है कि उपमा अलङ्कार के प्रयोग में साधारणधर्म की स्थिति अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

साधारणधर्म की सत्ता उपमेय और उपमान दोनों में रहती है। और इस इस सत्ता की अभिव्यक्ति काव्य में गुण या क्रिया के रूप में होती है। आचार्य भामह ने गुणलेशजन्य समानता का उल्लेख किया है किन्तु उपमा का तात्पर्य समानतामात्र में चरितार्थ न होकर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में चरितार्थ होता है। यही चमत्काररूपा सौन्दर्याभिव्यक्ति-घटिति ही उपमा का प्राण है। और उसी स्थिति में उपमा के प्रयोग को सफल माना जा सकता है। प्रस्तुत विषय का सौन्दर्याधिक्य अप्रस्तुत विषय के सौन्दर्यमुख द्वारा ही सम्भव है। और इसी तरह उसमें मनोहारित्व का आधान होता है। आचार्य कुन्तक ने इस तथ्य को सुस्पष्ट रूप से समझाया है कि प्रस्तुत उपमेय के उत्कर्ष को ख्यापित करने वाले अप्रस्तुत उपमान से उपमेय की समानता ही उपमा है।

अब यहाँ एक और बात महत्वपूर्ण है कि साधारणधर्म के परिदृश्य में उपमेय और उपमान का मार्ग एवं प्रकृति एक होने पर भी उपमेय के सौन्दर्याधिक्य को चमत्कार को उपमान का सौन्दर्य अभिव्यक्त करने लगता है। उपमान का उपमेय से देश-काल-क्रियाजनित भेद के होने पर भी उपमेय से साधारणधर्मगत एकता ही उपमा की चमत्कृति है। उपमान में यदि उपमेय के सौन्दर्यवर्धन की सामर्थ्य नहीं है तो, इससे उपमान की अयोग्यता ही सिद्ध होती है। इसीलिए आचार्य कुन्तक कहते हैं कि सतत सौन्दर्याधिक्य से युक्त उपमान से समानता की स्थिति ही उपमा है। और उपमा के हेतुभूत सादृश्यजनित अर्थ का सौन्दर्य ही कवि के कविकर्म की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित होकर चमत्कार की सिद्धि कर देता है।

Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal) ISSN: 3048-5991
Journal home page: https://integralresearch.in/ Vol. 01, No. 05, July. 2024

काव्य में चमत्कार का अभिनिवेश चार प्रकार के शब्दों- जाति, गुण, क्रिया और द्रव्य के माध्यम से होता है। ऐसी दशा में उपमेय एवं उपमान अपने सौन्दर्याधिक्य में तीन-तीन की उपस्थिति में प्रकट होते हैं। कभी एक साथ जाति, गुण और क्रियाजनित साम्य का चमत्कार प्रतीत है और कभी गुण, क्रिया और द्रव्यजनित साम्य का चमत्कार दिखाई देता है। पुनः वस्तु का शब्दार्थ-सन्तुलन भी आवश्यक है अन्यथा न्यूनाधिक्य की अवस्था में चमत्कारजनक समानता सरस होने के स्थान पर विरस हो जाती है। चूँकि इस लेख के केन्द्रीय विषय कालिदास हैं। इसलिए हम अनावश्यक विषय विस्तार करने की अपेक्षा उन्हीं की ओर मुड़ते हैं। पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि कालिदास उपमा को काव्यात्मा के शिखर पर ले जाते हैं। कवि ने उपमा के माध्यम से सौन्दर्य की जितनी निर्वाध अभिव्यक्ति की है, वह न तो ध्वनि के द्वारा सम्भव है न ही वक्रोक्ति, रीति और औचित्य के माध्यम से। यहाँ तो चमत्कृत कर देने वाले अर्थबोध के साथ उपमान का गूढ़ सौन्दर्य समानता के आधार पर उपमेय में सहसा प्रकट होकर मन को मुग्ध कर देता है। महाकवि कालिदास की उपमा का यह द्रष्टव्य है-

राम और लक्ष्मण यज्ञ-विध्वंसक राक्षसों से यज्ञ की रक्षा करने के लिए ऋषि विश्वामित्र के साथ ताटक वन की ओर जा रहे हैं। यज्ञ की सकुशल सम्पन्नता के अनन्तर ही उन्हें स्वयम्वर में भी उपस्थित होना होगा। यज्ञ रक्षार्थ राक्षसों का विनाश और स्वयम्वर में जानकीजी के वरण की मनोहर दशा का जो सजीव चित्रण कवि ने उपमा के द्वारा प्रस्तुत किया है, वह काव्यशास्त्रीय किसी भी विधा (गुण,ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति या औचित्य) का अवलम्ब लेकर कर पाना सम्भव नहीं है। महाकवि कालिदास कह रहे हैं-

“मातृवर्गचरणस्पृशौ मुनेस्तौ प्रपद्य पदवीं महौजसः।
रेजतुर्गतिवशात् प्रवर्तिनौ भास्करस्य मधुमाधवाविव।।“

(रघुवंशम् 11/07)

धनुष से सजे हुए कन्धों वाले राम और लक्ष्मण ऋषि विश्वामित्र के पीछे चलते हुए ऐसे ही सुशोभित हो रहे हैं जैसे मीन एवं मेष सङ्क्रान्ति के सूर्य के साथ मधु (चैत्र) और माधव (वैशाख) मास सुशोभित होते हैं। पतझड़ के अनन्तर आने वाले चैत्र मास में प्रकृति अपने पूर्ण यौवन का लाभ कर रही होती है। आम के बौर, महुए के पुष्परस, पलाश के लाल फूल मानो एक साथ मिलकर प्रकृति का अभिनन्दन करने के लिए उतावले हो उठते हैं। चैत्र की इसी सुकुमारता और मोहकता का नूतन सौन्दर्य कवि ने राम के व्यक्तित्व में उड़ेल दिया। और चैत्र के पश्चात् मेष सङ्क्रान्ति का सूर्य उच्च का होकर ताप को बढ़ा देता है किन्तु वसन्त ऋतु के पुष्प और पुष्परस की बहार का शीतल स्पर्श उस ताप को मन्द कर देता है। रस स्पर्श से मन्द हुए इस सह्य ताप का सादृश्य लक्ष्मण में भावित किया गया है। ऋषि विश्वामित्र वसन्त ऋतु के सूर्य हैं जिसका ताप सुहावना और प्रखर दोनों है। चूँकि वे क्षत्रिय होते हुए ऋषि-चर्या-रत हैं, ऋषि पथ के पथिक हैं, इसलिए उनमें ये दोनों गुण विद्यमान हैं। यहाँ पर कवि कालिदास ने अपनी इस विलक्षण उपमा द्वारा विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण के गुण, स्वरूप, शक्ति और सौन्दर्य और क्रिया की अत्यल्प शब्दों में जो निर्बाध अभिव्यक्ति की है, उसका दृष्टान्त अन्यत्र दुर्लभ है। भारत जैसे सर्व-ऋतु-सम्पन्न देश के के ऋतुचक्र को जानने वाला सहृदय व्यक्ति कालिदास के काव्यानन्दस्वरूप इस काव्यात्मा का सहज प्रत्यक्ष कर सकता है।

Integral Research (Peer-reviewed, Open Access & Indexed Multidisciplinary Journal) ISSN: 3048-5991
Journal home page: https://integralresearch.in/ Vol. 01, No. 05, July. 2024

कविवर कालिदास कालिदास की उपमाओं के उपमान से हमारा जनमानस परम्परागत ढंग से सुपरिचित है। वे उपमान लोकसिद्ध हैं। किन्तु जब वे कवि की कविता के विषय बनते हैं तो, उपमेय और उपमान दोनों परस्पर सौन्दर्य से अपने सौन्दर्यातिशय को प्राप्त कर लेते हैं। यही उपमा की अतिरिक्त चमत्कृति है,यही उसका सौन्दर्याधिक्य है। कवि की एक और उपमा प्रस्तुत है-

यह उपमा रघुकुलकुलगुरु ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के आश्रम में रहने वाली कामधेनसुता नन्दिनी की है। कामधेनु के शाप से महाराज दिलीप पुत्र-प्राप्ति से वञ्चित हैं। तो, गुरु वशिष्ठ उन्हें इस कार्य की सिद्धि हेतु नन्दिनी की सेवा का दायित्व सौंपते हैं। और अपनी चर्चा के प्रसङ्ग में ही नन्दिनी वन से चर कर लौट आयी थी। गुरु वशिष्ठ और स्वयं राजा ने उस दिव्य धेनु का दर्शन किया। इस दशा विशेष का वर्णन करते हुए कालिदास कहते हैं-

"ललाटोदय माभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
विभ्रती श्वेतरोमाङ्कं सन्ध्येव शशिनं नवम्॥"
(रघुवंशम् 01/83)

नन्दिनी नवीन किसलय की भाँति स्निग्ध और पाटल (गुलाबी) वर्ण की थी। उसके ललाट पर श्वेत वर्ण का टेढ़ा चिह्न अङ्कित था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे सन्ध्या द्वितीया के चन्द्रमा को धारण किए हुए हो। कवि की यह उत्तम भावानुगा कल्पना-प्रौढि उपमा का परिचय करा देने तक ही सीमित नहीं है,अपितु वह तो उपमा के द्वार से भावी घटना का सङ्केत कर रही है। नन्दिनी के ललाट पर अङ्कित श्वेत रोमलेखा महाराज दिलीप की पुत्रेच्छा पवित्र उज्जवल रेखा है,जिसे अनुदिन बढ़ते ही जाना है। राजा नन्दिनी की सेवा में ही पुत्र-प्राप्ति का मार्ग देख रहा है। वह पुत्र द्वितीया के चन्द्रमा की भाँति प्रतिदिन वर्धमान अपनी कीर्तिकौमुदी से सम्पूर्ण विश्व को आलोकित कर देगा।

कालिदास उपमान के साथ ही साथ उपमेय पर भी विशेष बल देते हुए दिखाई देते हैं। वे उपमान के ही योग्य घटित होने वाले उपमेय को भी ढूँढ़ लेते हैं। उपमेय ऐसा होना चाहिए जो उपमान की सार्थकता सिद्ध कर दे, उसे प्रफुल्लित कर दे। यहाँ पर शुक्ल पक्ष की द्वितीया एवं कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के चन्द्रमा के दृष्टान्तमुख से कवि ने बहुत ही सुन्दर उपमा का भाव परोसा है। दोनों ही तिथिओं का चन्द्रमा एक श्वेत टेढ़ी रेखामात्र होता है। अन्तर केवल इतना है कि शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा सन्ध्याकालीन पश्चिम दिशा के गुलाबी आकाश में उदित होता है और कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा रात्रि के अवसान पर क्षितिज में दिखाई देता है। महाकवि कालिदास ने कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के चन्द्रमा को उपमान के रूप में प्रस्तुत करके भाव एवं भावी कथा का बहुत ही सहज और सजीव चित्रण किया है। देखिए-

"आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वाम्,
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्द्धमिच्छारतैर्या;
तामेवोष्णैर्विरह-महतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्॥"
(मेघदूतम् 02/28)

यक्षाधिपति कुबेर के शाप से श्रीहीन यक्ष मेघ से अपनी विरहिणी प्रियतमा की शरीरदशा का वर्णन करते हुए उसकी विरहाग्नितप्त क्षीण काया का चित्रण कर रहा है। प्रिय-वियोग में क्षीणाङ्गी यक्षिणी कोमल पत्तों की की शय्या पर एक ही करवट लेटी हुई, रात्रि

की गोंद में चतुर्दशी के चन्द्रमा की भाँति कलामात्र प्रतीत हो रही होगी। जो रात्रि सुखद इच्छाओं के बीच क्षणमात्र में व्यतीत हो जाती थी, वही अब वियोगदशा में लम्बी होकर ढुलकते हुए गर्म आंसुओं के साथ बिताई जा रही होगी। यहाँ पर कवि ने यक्षिणी की उपमा चतुर्दशी के चन्द्रमा से देकर उसके सङ्कटपूर्ण जीवन और साथ ही दुर्दिन के बाद सुखद मिलन का सङ्केत भी किया है। चन्द्रमा अमावस्या और प्रतिपदा को अस्त रहता है। पुनः शुक्ल पक्ष की द्वितीया से बढ़ने लगता है। दुर्दिन के चार मास यक्षिणी के लिए अमावस्या और प्रतिपदा की भाँति अन्धकारमय हैं। यहाँ तक तो भावी कथा और कथासङ्गति की चर्चा हुई। अब विरहक्षीणा यक्षिणी के सौन्दर्य की विलक्षण अभिव्यक्ति देखिए-

चतुर्दशी की रात्रि के अवसानकाल में क्षितिज पर उषा की अव्यक्त आभा फैल रही है और उसके ऊपर आकाश में रात्रि का अन्धकार छाया हुआ है। उस अन्धकार के बीच चन्द्रमा की एक कला अपनी शुभ्र ज्योति में चमक रही है। प्रातःकाल उठकर जिसने सर्वप्रथम उस चन्द्रमा का दर्शन किया होगा, वही उसकी मोहकता का अनुभव कर सकता है। चारों ओर से घने अन्धकार में निमग्न यक्षिणी के दुर्बल शरीर से छिटकते हुए मोहक सौन्दर्य का अनावरण कवि ने रात्रि की गोंद में उदित एक कलामात्र चन्द्रमा की शुभ्र ज्योति से करा दिया। साथ ही यह भी उतना ही सत्य है कि इस कलावशिष्ट चन्द्रमा की चन्द्रिका का सौन्दर्यबोध भी इस यक्षिणी के मोहक सौन्दर्यरूप उपमेय के सन्दर्भ में अधिक शोभायमान हो रहा है। यही उपमेयोपमानोभय सौन्दर्य कालिदास की उपमा की अतिरिक्त विशिष्टता है,जो अन्य कवियों के काव्यों में सर्वथा दुर्लभ हैं।

महाकवि कालिदास की ये उपमाएँ सामान्य सादृश्य तक ही सीमित नहीं हैं, अपितु काव्य-रचना के माध्यम से काव्यात्मा की अनुभूति कराने वाली हैं, काव्यात्मा की अभिव्यक्ति हैं। कवि कालिदास अभिधा के माध्यम से भी उपमा को सुसज्जित कर देने की सामर्थ्य रखते हैं। उनके लिए व्ञ्जना के उत्तम अवलम्ब की आवश्यकता नहीं है। इस प्रसङ्ग में इन्दुमती के स्वयम्वर-सभा का दृष्टान्त दर्शनीय है-

अपनी स्वयम्वर-सभा में युवराज्ञी इन्दुमती राजमार्ग की चलती-फिरती दीपशिखा की भाँति जिस-जिस राजा को छोड़कर आगे बढ़ जाती है उस-उस राजा का मुख दीपशिखा के आगे चले जाने पर राजमार्ग पर स्थित महलों के समान ही निस्तेज और अन्धकारमय हो जाता है-

"सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।"
(रघुवंशम् 06/67)

इन्दुमती का अनुपम सौन्दर्य मानवमन को अपनी मोहिनी से अभिभूत कर देने वाला प्रकाशपुञ्ज है। वह प्रकाशपुञ्ज कामसंवेदन से उद्दीप्त है। उसके संयोग से मन प्रसन्न और वियोग से उदास हो रहे हैं। हम इसे केवल उपमा तक सीमित नहीं कर सकते। यह तो मानवमन का स्वाभाविक मनोविज्ञान या युवा मन का सहज वेग है,जिसका विश्लेषण कालिदास ने किया है। नारी का सौन्दर्य मनुष्य के सुकुमार मन का दुर्बल पक्ष है। इस उपमा को दूसरे दृष्टिकोण से देखने पर यह अर्थ भी निकलता है कि जब युवराज्ञी इन्दुमती किसी राजा के सम्मुख उपस्थित होती है तो,उसका हृदय आशा से वैसे ही उद्दीप्त हो जाता है जैसे दीपशिखा की उपस्थिति में राजमार्ग पर स्थित भवन। किन्तु कालिदास ने इस अर्थ-पक्ष पर बल नहीं दिया। वस्तुतः विवर्णभाव में संवेदना का जो भाव विद्यमान है वह

कदाचित् प्रफुल्लभाव में नहीं है। नारी के सौन्दर्य के प्रति मनुष्य के सुकुमार मन की दुर्बलता की स्फुट अभिव्यक्ति विवर्णभाव में ही सम्भव है। उपमा का कार्य केवल सादृश्यबोध के माध्यम से उपमेयोपमान की अर्थप्रतीति ही नहीं है। वह तो अपनी अदृष्ट गूढ़ शक्ति के माध्यम से स्त्री-पुरुष के हर्ष, शोक, भय, शील, लज्जा, प्रेम, घृणा, रति आदि संवेदनों की मूल प्रकृति का विश्लेषण भी करती है। और कालिदास निश्चप्रच उपमा की इस साधना-पथ के कुशल साधक सिद्ध हुए हैं।

महाकवि कालिदास का उपमा-वैशिष्ट्य वैदर्भी के विराट् वारिधि में परिस्नात होकर काव्य के निर्मलभाव के पोषण, मानवमन के सुकुमार संवेदन की अभिव्यक्ति और काव्यार्थ की व्यञ्जना में सहज ही समर्थ हो जाता है। इसीलिए कवि की निस्तुल्य उपमा काव्य के माध्यम से काव्यात्मा की अभिव्यक्ति कराने वाली सिद्ध हो गयी है। इसीलिए उद्भट महोदय को हठपूर्वक यह उद्घोष करना पड़ा कि-

"उपमा कालिदासस्य।"

संदर्भ सूची:

नगेंद्र (1968). कालिदास की उपमा-शैली. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन.

वर्मा, रामकुमार (1955). संस्कृत काव्य में अलंकार योजना. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.

द्विवेदी, हजारीप्रसाद (1947). कालिदास : काव्य और दर्शन. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन.